अपनी बेटी पद्मश्री किरण सेगल के साथ ज़ोहरा सेगल

अलविदा ज़ोहरा आपा

गौहर रज़ा

सैलफ़ोन की घंटी बजी, मैंने बेख़्याली में बटन दबाया, शबनम की आवाज़ आई— "ज़ोहरा आपा नहीं रहीं।"

दिमाग़ को ज़बरदस्त झटका लगा हालांकि यह हम सभी जानते थे कि एक न एक दिन तो यह होना ही है।

उधर से आवाज़ आई— "किरन का फ़ोन आया था, तुम सबको ख़बर कर दो, मैं भी कर रही हूं।"

लोगों को टेलीफ़ोन से यह ख़बर देते वक्त ज़ोहरा आपा का हंसता बल्कि खिलखिलाता चेहरा नज़रों के सामने था। उनके चेहरे की बातें करती और कहानियां कहती झुर्रियां, गहरी शोख़ आंखें, उतार-चढ़ाव से भरपूर चुलबुली आवाज़ सब बार-बार ज़ेहन में उभर रहे थे।

ज़ोहरा आपा की उम्र १०२ साल थी। उनसे मिलने वाले हर शख़्स को शायद मेरी तरह यह गुमान था कि ज़ोहरा आपा बस उसी की थीं। उनके बारे में पढ़े हर मज़मून में मुझे उनके लिए उतनी ही मुहब्बत दिखाई दी जितनी कि मैं महसूस करता हूं।

मैंने ज़ोहरा आपा को पहली बार सफ़दर के नाटक 'मोटेराम का सत्याग्रह' में स्टेज पर देखा था। उनकी अदाकारी ने देखने वालों पर जादू कर दिया था। नाटक में वे अपने से क़रीब चालीस साल छोटी उम्र के कलाकार की बीबी का रोल निबाह रही थीं लेकिन पूरे नाटक में उम्र के इस फ़ासले का अहसास ही नहीं हुआ। यह थी ज़ोहरा सेगल की अदाकारी!

सफ़दर की मौत के बाद मैंने 'जन नाट्य मंच' और 'सहमत' में काम करना शुरू किया तो ज़ोहरा आपा से रस्मों-राह बढ़ती गई। 'सहमत' के लिए शबनम को जब किसी मीटिंग, प्रोग्राम या प्रदर्शन के लिए उन्हें बुलाना होता तो कहती "तुम बात करो ना आपा से, वो तुम्हारी बात कभी नहीं टालेंगी।"

मुझे नहीं याद कि ज़ोहरा आपा ने पिछले तीस सालों में कभी किसी प्रोग्राम या मीटिंग के लिए इनकार किया हो या कभी अपने बुढ़ापे और ख़राब तबियत की दुहाई दी हो।

एक बार मुझे ज़ोहरा आपा से कुछ काम था और मैंने उनसे मिलने के लिए वक्त लिया। मैं 'अनहद' के दफ़्तर में था जहां कई नौजवान लड़के-लड़कियां भी मौजूद थे। सभी पीछे पड़ गए हम भी चलेंगे उनसे मिलने। ख़ैर, चलने से पहले टेलीफ़ोन किया।

"ज़ोहरा आपा मेरे साथ पांच-सात बच्चे भी आना चाहते हैं आपसे मिलने।"

"हां, ज़रूर।"

"चाय की तकलीफ़ ना करें।"

दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई— "इतना भी बुरा ज़माना नहीं आया है कि ज़ोहरा के घर चाय की पत्ती ख़त्म हो गई हो। मुझे सुनाई नहीं दे रहा, ऊंचा सुनती हूं ना," और एक कहकहे के साथ लाइन कट गई।

हम सभी सीढ़ियां चढ़ते, हांफ़ते-कांपते ऊपर पहुंचे, उनकी बिल्डिंग में लिफ़्ट नहीं थी। हर एक के ज़ेहन में यही सवाल था कि नब्बे बरस की ज़ोहरा आपा कैसे कहीं बाहर आती जाती हैं।

छोटा सा कमरा, जिसे जहां जगह मिली वहीं बैठ गया, कुछ बच्चे फ़र्श पर बैठ गए और बातों का सिलसिला कहां से कहां पहुंच गया पता ही न चला। ऐसा लग रहा था जैसे बच्चे दादी को घेर कर बैठे हैं और उन पर कहानियों का जादू तारी है। जब चाहती सबको हंसा देतीं, जब चाहती संजीदा कर देतीं और जब चाहती सबकी आंखे नम कर देतीं।

अचानक बोली "तुम्हें मालूम है कैंसर के मरीज़ों का भी एक तंज़ीम है, मुझे बुलाया है। मुझे भी कैंसर है, आह! ऐसा मुंह मत बनाओ अभी मरने वाली नहीं हूं, यहां पिंडली में है।"

उन्होंने अपनी सलवार का पांयचा ऊपर उठाया और बोली— "जहां कैंसर है वहां गरम महसूस होता है। छूकर देखो।"

एक-एक करके सभी बच्चे फ़िक्रमंदी से उनकी पिंडली छूने लगे। तभी उन्होंने कहकहा लगाया और आंखों में शरारत भर कर कहने लगीं "बड़े मज़े हैं। ज़ोहरा की पिंडली छूने को मिल रही है।"

सब हंसने लगे। न कैंसर का दुखड़ा, न दर्द का रोना, इसी तरह बरता उन्होंने अपनी हर बीमारी को।

ज़ोहरा आपा की याददाश्त कमाल की थी। 'सहमत' ने फ़ैसला किया कि 1957 मनाएं और लाल किले पर प्रोग्राम किया जाए। मुझसे एक वृत्तचित्र बनाने को कहा गया। हमारे पास 1957 की कुछ ज़्यादा तस्वीरें नहीं थीं। यहां-वहां से कुछ 'ऐचिंग्स' हासिल कीं। उनके साथ पन्द्रह मिनट की फ़िल्म नहीं बन सकती थी। मैंने सोचा क्यों न ज़ोहरा आपा से कहें कि वे कमेन्ट्री के कुछ हिस्सों को स्टेज पर अदाकारी के साथ पेश करें और बाक़ी कमेन्ट्री मैं तस्वीरों के साथ दूं।

फ़ोन किया "ज़ोहरा आपा मिलना है।"

"हां तो आ जाओ, कब आओगे।"

मैंने उन्हें अपनी तजवीज़ बताई, उन्हें बेहद पसंद आई। नब्बे साल की उम्र में भी वो नए तजुर्बों के लिए हमेशा तैयार रहती थीं। अगले दिन उन्हें

विभिन्न किरदारों में ज़ोहरा आपा

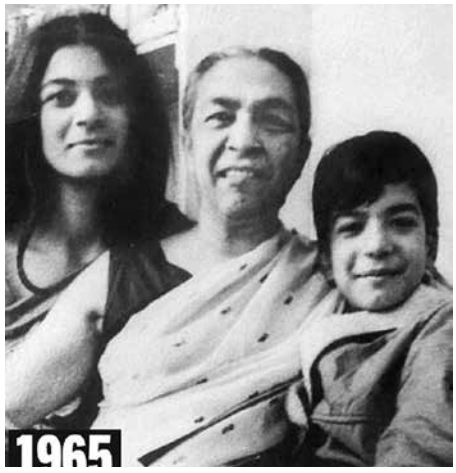

स्क्रिप्ट पढ़कर सुनाई। जब पढ़ना ख़त्म कर के मैंने नज़रें ऊपर उठाईं तो ज़ोहरा आपा की आंखों में आंसू थे। लगा इम्तहान पास हो गया।

बोलीं "बेहद अच्छी है, कल आना, मैं वो हिस्से चुन लूंगी जो ज़्यादा जज़्बाती हैं।"

अगले दिन फिर पहुंच गया। चाय के दौरान हमेशा की तरह मज़ाक कर रही थीं लेकिन ज़ेहन कहीं खोया हुआ था।

उन्होंने स्क्रिप्ट मुझे दी और कहा मैंने निशान लगा दिए हैं, तुम अपने हिस्से पढ़ते जाना।

कुर्सी से उठी और बग़ैर किसी कागज़ को देखे अपना हिस्सा अदाकारी के साथ पेश करने लगीं। मैं भौचक्का उन्हें देख रहा था। अपना हिस्सा ख़त्म करके बोलीं, अपना हिस्सा पढ़ो।

मैंने हड़बड़ा कर स्क्रिप्ट को देखा।

उन्होंने बिना एक लफ़्ज इधर से उधर किए क़रीब पांच पेज, एक रात में मुंह ज़बानी याद कर लिए थे। यहां तक कि उन्हें मेरे हिस्से भी याद थे।

मैंने सोचा, "ख़ुदाया, किस जादूगरनी से पाला पड़ा है।"

11 मई 1997 को लाल किले पर हज़ारों लोगों की मौजूदगी में बिना रिहर्सल किए ज़ोहरा आपा ने वो अदाकारी की जो आज भी लोगों को याद है। मेरी तमन्ना ही रह गई कि वो कहीं तो ग़लती करतीं, पूरे प्रोग्राम में कहीं तो नज़र का काला टीका होता।

छः महीने बाद मैंने कुछ पैसे जुटाए, स्टूडियो हासिल किया और शूटिंग के लिए ज़ोहरा आपा को फ़ोन किया।

उधर से आवाज़ आई "हां, बताओ कब आऊं?"

मैंने पूछा आपके पास स्क्रिप्ट है या भेजूं। बोली स्क्रिप्ट की क्या ज़रूरत है, मुझे याद है। शूटिंग के दौरान बिना किसी ग़लती के "सिंगल टेक" में शूट पूरा किया। पूरी टीम दंग थी उस पर आपा का अंदाज़ यह कि जैसे कुछ ख़ास बात नहीं।

पति कामेश्वर सेगल और ज़ोहरा

2005 में शबनम ने कहा, "महिलाओं का एक सम्मेलन हो रहा है। ज़ोहरा आपा से कहो हम उनकी उसी तकरीर से शरूआत करना चाहते हैं।"

मैंने फ़ोन किया, बात तय हो गई। प्रोग्राम हुआ और सात साल बाद भी उन्हें स्क्रिप्ट लफ़्ज-ब-लफ़्ज याद थी।

ज़ोहरा आपा के बड़े एहसान हैं मुझ पर। मेरी नज़्मों के ऑडियों कैसेट में उन्होंने अपनी आवाज़ दी। 96 साल की उम्र में उन्होंने भगतसिंह पर मेरी फ़िल्म इंकलाब में अदाकारी की।

मेरे ख़याल में ज़ोहरा आपा 102 साल तक इसलिए ज़िंदा रहीं कि हर बार यमदूत को अपनी जादू भरी बातों और कहानियों में उलझा लेती होंगी और मौत के फ़रिश्ते हंसते हुए लौट जाते होंगे। इस बार उन्होंने कहा होगा "चलों में भी तुम्हारे साथ चलती हूं। ज़रा देखूं सही इस दुनिया के उधर क्या है। यह मत समझना कि मैं थक गई हूं।"

ऐसी थीं ज़ोहरा आपा।

अभिव्यक्ति के अनेक चेहरे, साभारः इंटरनेट

गौहर रज़ा, लेखक व अमन कार्यकर्ता हैं।